International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

गृहस्थ एवं सन्यासी जीवन के परिप्रेक्ष्य में अभ्यास एवं वैराग्य अनुष्ठान पालन : एक अध्ययन

मनीषा वैद[1] एवं अरूण कुमार सिंह[2]

1. शोध–छात्रा, योग विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड, पौड़ी
2. प्रोफेसर, योग विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड, पौड़ी

प्रस्तावना

मनुष्य चाहे गृहस्थ हो, अथवा सन्यासी। दोनों के जीवन में योग साधना का अपना–अपना महत्त्व है। जीव को मनुष्य शरीर इसलिए मिलता है कि उसके द्वारा वह परम–पद को प्राप्त हो, इसलिए नहीं कि वे सांसारिक विषय–भोगों में ही जीवन व्यतीत कर दें। अभ्यास एवं वैराग्य योग के अभिन्न अंग हैं, मनुष्य यदि अपने जीवन में इन अंगों का पालन करे, तो वह स्वास्थ्य तो प्राप्त करता ही है, साथ ही साथ परमात्मा से भी एकाकार हो जाता है। गृहस्थ एवं सन्यासी दोनों का जीवन बिल्कुल भिन्न होता है। दोनों अपने–अपने आश्रम का निर्वाह कर किस प्रकार अभ्यास एवं वैराग्य अनुष्ठान का पालन कर सकते हैं, यह स्पष्ट करना ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

कुंजी शब्द : योग, अभ्यास, वैराग्य, पर–वराग्य, सन्यास।

गृहस्थ एवं सन्यासी जीवन शैली

जीवन जीना एक कला है। प्रत्येक आत्मा जो इस लोक में मनुष्य शरीर धारण करती है, भिन्न–भिन्न प्रकार से अपना जीवन यापन करती है। चाहे प्रत्येक मनुष्य अपने–अपने तरीके से जीवन जीता है, किन्तु सम्पूर्ण मानव जाति में दो बातें समान होती है, प्रथम गृहस्थ एवं द्वितीय सन्यास। प्रायः देखा जाता है कि अधिकांश मनुष्य

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

विवाह करते हैं, तथा गृहस्थ आश्रम के दायित्वों का निर्वहन करते हैं। वहीं दूसरी तरफ सन्यासी जीवन बिताने वालों की संख्या बहुत कम पाई जाती है। गृहस्थ हो या सन्यासी, जीवन तो दोनों ही जीते हैं, किन्तु दोनों की जीवन–शैली में बहुत अन्तर होता है।

एक गृहस्थ वह चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, इन पर दायित्वो का बोझ अधिक होता है। दोनों को एक–दूसरे के विषय में सोचना पड़ता है। एक–दूसरे की भावनाओं का सम्मान करना पड़ता है। यही बात उनके बच्चों तथा परिवार पर भी लागू होती है। सन्यासी केवल आत्मकेन्द्रित होता है, किन्तु गृहस्थ आत्म–केन्द्रित होने के साथ–साथ अपने परिवार को भी केन्द्र में रखता है। गृहस्थ समाज से जुड़ा हुआ वह प्राणी होता है, जो समाज से अलग होने की कल्पना भी नहीं कर सकता। गृहस्थ एवं समाज एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। गृहस्थ एक धर्म है। प्राचीन ग्रन्थों एवं धर्म शास्त्रों में गृहस्थ धर्म को मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य कहा गया है। मनु महाराज ने गृहस्थ के विषय में कहा है कि पुरुष, उसकी पत्नी एवं उनकी संतान को मिलाकर ही एक 'सम्पूर्ण मनुष्य' होता है। इन सबके बिना उसे अधूरा तथा खंडित मनुष्य ही कहा जाएगा। प्रायः देखा जाता है कि हमारे अधिकांश ऋषि गहस्थ ही थे। उन सबने अपने गृहस्थ धर्म का पालन भी किया, एवं अनेकों सिद्धियाँ भी प्राप्त की। श्रीराम तथा योगश्वर कृष्ण दोनों गृहस्थ थे। महर्षि वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, जमदग्नि, गौतम, अत्रि, लोमश आदि ऋषियों ने गृहस्थाश्रम की मर्यादाओं का पूर्णरूपेण पालन भी किया, तथा जनकल्याण के उत्थान के लिए अनेकों कार्य भी किए। गृहस्थ आश्रम आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। गृहस्थ आश्रम के पालन से भी मुक्ति, स्वर्ग, सिद्धि प्राप्त होती है।[1]

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

जिस प्रकार गृहस्थ–आश्रम के अपने नियम होते हैं, उसी प्रकार एक सन्यासी को भी बहुत से नियमों का पालन करना होता है। यदि कोई मनुष्य सन्यास ग्रहण करना चाहता है तो उसे उसके लिए अनेकों प्रकार से त्याग करने पड़ते हैं। सर्वप्रथम सन्यास धारण करने से पहले उसे अपने परिवार का त्याग करना होता है। सन्यासी हर समय भोजन नहीं कर सकता, उसे पूरे दिन में एक बार ही खाना होता है। भोजन में ऐसा नहीं कि वह कुछ भी खा ले। राजसिक एवं तामसिक भोजन से उसे दूरी बना कर रखनी होती है। सन्यासी केवल सात्विक भोजन ही ग्रहण करता है।

सन्यासी की जीवन शैली किस प्रकार की होती है, इस विषय में भर्तृहरिनाथ के वैराग्य शतक में प्रतिपादित है कि–

पाणि पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं

विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमपमलं तल्पमस्वल्पभुर्वी।

येषाः निः सङ्गताङ्गीकरण्परिणतः स्वान्तसन्तोषिणस्ते

धन्याः संन्यस्तदैन्यण्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति।।

अर्थात् सन्यासी की शैय्या यह भूमि ही होती है। किसी प्रकार का गद्देदार बिस्तर नहीं। सन्यासी को किसी प्रकार का संग अपेक्षित नहीं होता, निःसंगता में ही वे अपनी तपस्या करते हैं। सन्यासी वे धन्यभागी होते हैं, जो कर्म–बन्धनों को जड़–मूल से उखाड़ने में समर्थ तथा सफल हो पाते हैं।[2]

अभ्यास एवं वैराग्य

अभ्यास एवं वैराग्य योग साधना के उपाय है। समाधी प्राप्ति के मार्ग में अभ्यास

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

एवं वैराग्य ये दोनों उपाय सहगामी है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगदर्शन में कहा गया है कि अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः[3] (1/12) अर्थात् अभ्यास एवं वैराग्य से चित्तवृत्तियों का निराध होता है। यदि इसे सरल शब्दों में कहा जाए तो चित्त के सभी व्यापार (चंचलता आदि) अभ्यास एवं वैराग्य का आलम्बन करने से रूक जाते हैं। अभ्यास एवं वैराग्य की महत्ता के विषय में श्रीमद्भगवतगीता में प्रतिपादित है कि

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।[4] 6/35

अर्थात् निःसन्देह यह मन चंचल है, और कठिनता से वश में होने वाले हैं, अभ्यास एवं वैराग्य से यह वश में होता है। अभ्यास से चित्तवृत्तियों का निरोध एवं चंचल मन वश में होता है, किन्तु अभ्यास का लक्षण क्या है, इस विषय पर पातंजल योगदर्शन में उद्धृत है कि **तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः।**[5] 1/13 अर्थात् स्थिति के निमित्त प्रयत्न करना ही अभ्यास है। महर्षि व्यास के अनुसार वृत्तियों से रहित चित्त का निस्तरङ्ग प्रवाहित होना चित्त की स्वाभाविक स्थिति है। उसके लिए किया गया मानसिक प्रयास ही अभ्यास है। अभ्यास की यह परिभाषा केवल योग साधना के लिए ही नहीं, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य जो कुछ प्राप्त करना चाहता है, वहां मान्य है। यह अभ्यास किस प्रकार का होना चाहिए, इस विषय पर महर्षि पतंजलि का कथन है कि **स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः**[6] 1/14 तात्पर्य यह है कि वह अभ्यास दोर्घकाल अर्थात् जब तक स्थिति की प्राप्ति न हो जाए तब तक निरन्तरता से (नियम से प्रतिदिन) सत्कार सहित (श्रद्धापूर्वक) करने पर ही सुदृढ़ होता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

वैराग्य समाधि प्राप्ति में अभ्यास के पश्चात् दूसरा उपाय है। वैराग्य को पातंजलयोगदर्शन में इस प्रकार परिभाषित किया गया है **दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।**[7] 1/15 अर्थात् देखे और सुने हुए विषयों में वितृष्णा हो जाना ही वशीकारसंज्ञा वैराग्य है। इसे अपर–वैराग्य भी कहा जाता है। अपरवैराग्य के पश्चात् परवैराग्य आता है जो वैराग्य का उच्चतम स्तर है। वह इस प्रकार है– **तत्परं पुरुषख्यातेगुर्णवैतृष्ण्यम्।**[8] 1/16 अर्थात् जब साधक स्वयं को जान चुका होता है, तो उसमें सात्विक वृत्ति के प्रति भी वितृष्णा हो जाती है, यही अवस्था परवैराग्य है। इसी तरह अभ्यास एवं वैराग्य को अपनाकर साधक शनैः–शनैः समाधि अवस्था ग्रहण कर लेता है।

अभ्यास एवं वैराग्य अनुष्ठान पालन

आत्मोन्नति करने के लिए गृहस्थ धर्म एक प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक एवं सर्वसुलभ योग है। पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार आत्मीयता की उन्नति के लिए अभ्यास करने का सबसे अच्छा स्थान मनुष्य का घर ही होता है। नट अपने ही घर के आंगन में कला खेलना सीखता है। बालक अपने घर में खड़ा होना तथा चलना–फिरना सीखता है। अतः योग साधना भी घर से ही प्रारम्भ होनी चाहिए। प्रेम, त्याग, सेवा का अभ्यास करने के लिए अपना घर ही सबसे उत्तम क्षेत्र है।[9] काम, क्रोध, लोभ के प्रहारों को सहना, उनसे परिचित होना एवं उनसे लड़कर विजय प्राप्त करना इन्हीं सब अभ्यासों के लिए वर्णाश्रम के तत्त्वदर्शी आचार्य गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ–सर्वोपरि आश्रम बताते हैं।

अष्टांगयोग अभ्यास के अंग है। अष्टांगयोग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आते हैं। जिनका पालन गृहस्थ एवं

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

सन्यासी सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। आइये अब इनको समझते हैं।

यम

यम के पांच अग है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह का पालन गृहस्थ एवं सन्यासी दोनों के लिए समान है। ब्रह्मचर्य का शाब्दिक अर्थ होता है– ब्रह्म मे आचरण करना। यदि ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ लिया जाए तो इन्द्रिय निग्रह होता है। अब यहां प्रश्न यह उठता है कि क्या गृहस्थ ब्रह्मचारी नहीं हो सकता? तो इसका उत्तर यह है कि केवल सन्तान प्राप्ति के लिए जो सवपत्नी अथवा पति का संग करते हैं, वे पुरुष ब्रह्मचारी तथा महिलाएं ब्रह्मचारिणी कहलाती है। सन्यासी के परिप्रेक्ष्य में यदि ब्रह्मचर्य की बात की जाए तो, उसे सन्तान उत्पत्ति नहीं करनी होती, अतः सन्यासी को मन, वचन, कर्म आदि से भी अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना होता है। यही है गृहस्थ एवं सन्यासी के परिप्रेक्ष्य में यम का अनुष्ठान।

नियम

नियम के भी पांच अंग है। शाच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान।

शरीर की आन्तरिक एवं बाह्य सफाई करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य बनता है। जो प्राप्त है उसी में सन्तुष्ट रहना, सन्तोष, द्वन्द्वों को सहना, तप, स्वयं का एवं सद् ग्रन्थों का अध्ययन करना स्वाध्याय तथा अपन द्वारा किए गए प्रत्येक कर्म को ईश्वर को अर्पित कर देना ईश्वर प्रणिधान है। नियम भी गृहस्थ एवं सन्यासी दोनों के लिए समान है।

आसन–प्राणायाम

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

स्वस्थ रहना प्रत्येक मनुष्य का मूलभूत अधिकार है। अपने स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए गृहस्थ हो अथवा सन्यासी, दोनों का ही आसन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

धारणा–ध्यान–समाधि

ईश्वर का साक्षात्कार प्रत्येक मनुष्य करना चाहता है। फिर चाहे वह गृहस्थ आश्रम के नियमों का पालन करने वाला हो अथवा सन्यास आश्रम का। समाधि तक पहुँचने का मार्ग धारणा एवं ध्यान द्वारा प्रशस्त होता है, जिनका आरम्भ यम–नियमादि से हो जाता है।

वैराग्य, त्याग, विरक्ति इन महातत्त्वों का सीधा सम्बन्ध अपने मनोभावों से है। यदि भावनाएँ संकीर्ण हो, कलुषित हो, तथा स्वार्थमयी हो तो चाहे जैसी उत्तम सात्विक स्थिति में मनुष्य क्यों न रहे, मन का विकार वहां भी पाप के दुराचार की पुष्टि ही करेगा। यदि भावनाएं उदार एवं उत्तम है, तो अनिष्टकारक स्थिति में भी गृहस्थ एवं सन्यासी पुण्यता तथा पवित्रता उत्पन्न करेंगे। विवाह उपरांत मनुष्य को अनेक दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है, एवं यही दायित्व उसमें वैराग्यभाव को प्रोत्साहित करते हैं। जैसा कि पूर्व में कहा गया विवाह उपरांत पति–पत्नी एक दूसरे की सुख–सुविधाओं का अधिक ध्यान रखते हैं। इसे हम इस उदाहरण की सहायता से समझ सकते हैं। यदि पत्नी को कोई वस्तु अपने लिए पसन्द आती है, किन्तु वो पति को वह वस्तु अच्छी नहीं लगती, तो पत्नी वह वस्तु नहीं लेती। यह उदारहण माता–पिता के सन्दर्भ में भी लिया जा सकता है। यही तो त्याग की भावना है, जो अपने साथी तथा अपनी संतान के लिए किया जाता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

वैराग्य को यदि सन्यासी के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो पातंजलयोगसूत्र में वर्णित वैराग्य की परिभाषा के अनुसार ही सन्यासी को वैराग्य का अनुसरण करना होता है। सन्यासी के हृदय में सांसारिकता के प्रति किसी भी प्रकार का मोह नहीं होना चाहिए। इस अज्ञान रूपी मोह की जड़ें काट कर ही वह वैराग्य प्राप्त कर सकता है। सन्यासी का गृहस्थ की भांति घर–परिवार नहीं होता, कि उसे अन्य के विषय में सोचना पड़े। सन्यासी का एक ही लक्ष्य होता है– समाधि। समाधि प्राप्ति के लिए वह अभ्यास एवं वैराग्य का आलम्बन करता है। सन्यासी प्रत्येक कामना से विरक्त होता है, उसका तो जीवन ही वैराग्य से परिपूर्ण होता है। भगवान शिव को अपना आदर्श मानने वाले सन्यासी अपना सम्पूर्ण जीवन उन्हीं को प्राप्त होने में व्यतीत कर देते हैं। एक सन्यासी द्वन्द्वों से परे होता है वह शीत–ऊष्ण, लाभ–हानि, यश–अपयश आदि का विचार नहीं करता, तथा इन सांसारिकताओं से ऊपर उठकर अपनी साधना में रत रहता है।

उपसंहार

गृहस्थ एवं सन्यासी दोनों का जीवन योगमय हो सकता है। अभ्यास एवं वैराग्य को अपने जीवन में अपनाकर वे उच्चतम स्तर को प्राप्त कर सकते हैं। अभ्यास एवं वैराग्य आत्मिक उन्नति के मार्ग में अति श्रेयस्कर है। गृहस्थ एवं सन्यासी दोनों के जीवन–यापन के नियम एकदम भिन्न होते हैं। गृहस्थ को अनेक प्रकार के दायित्वों का निर्वाह करना होता है, तो सन्यासी का किसी दूसरे के प्रति कोई दायित्व नहीं होता। साधना तो दोनों ही करते हैं, किन्तु एक अपने साथ अपने घर–परिवार को लेकर करता है तो दूसरी ओर एक अपने घर–परिवार को त्यागकर करता है। जीवन जिसका जैसा भी हो सहज दोनों ही नहीं है क्योंकि मानव जीवन चुनौतियों से

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

परिपूर्ण है। अपने–अपने आश्रम का निर्वाह करते हुए गृहस्थ एवं सन्यासी दोनों अभ्यास एवं वैराग्य का आलम्बन करते हैं।

संदर्भ सूची

1. विवाहित जीवन का अलौकिक आनंद, युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा–3
2. भर्तृहरि शतक, वैराग्य शतक, सुनील शर्मा, मनोज पब्लिकेशन्स, 761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली–110084
3. पातंजलयोगदर्शनम्, व्याख्याकार– डॉ. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
4. श्रीमद्भगवतगीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस
5. पातंजलयोगदर्शनम्, व्याख्याकार– डॉ. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. वही
7. वही
8. वही
9. गृहस्थ– एक योग साधना, श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा–3